कश्मीर, नेहरू और तथ्य

अभिनव पांडेय

आरोप लगता है कि नेहरू की वजह से कश्मीर समस्या है,पटेल की जगह नेहरू ने इसे अकेले हैंडल किया इसलिए सब गुड़गोबर हो गया, UN जाकर सत्यानाश किया। सच क्या है? ये हैं तथ्य :

सितंबर का महीना,1949। कश्मीर घाटी में एक बेहद खास सैलानी पहुंचते हैं, नाम था पंडित जवाहरलाल नेहरू। झेलम नदी इस बात की गवाह है कि पं.नेहरू और शेख अब्दुला उसकी गोद में थे। दोनों ने करीब 2 घंटे तक खुले आसमान के नीचे नौका विहार किया। आगे-पीछे खचाखच भरे शिकारों की कतार थी...

हर कोई पं. नेहरू को एक नजर निहार लेना चाहता था। नेहरू पर फूलों की वर्षा हो रही थी, नदी के किनारे आतिशबाजी हो रही थी, स्कूली बच्चे नेहरू-अब्दुला जिंदाबाद के नारे लगा रहे थे। इस पर टाइम मैग्जीन ने लिखा- "सारे लक्षण ऐसे हैं कि हिंदुस्तान ने कश्मीर की जंग फतह कर ली है" मगर ये...बात तो तब की है जब कश्मीर का भारत में विलय हो चुका था, मामला ह भी पहुंच चुका था। तो बात यहां से शुरू नहीं होती। थोड़ा पीछे चलिए। देश आजाद होने वाला था, बंटवारे की शर्त यह थी को मुस्लिम बाहुल्य इलाके पाकिस्तान में जाएंगे, हिंदू बाहुल्य राज्य हिंदुस्तान में रहेंगे।..

रियासतों का विलय शुरू हुआ, मगर सबसे ज्यादा पेंच जूनागढ़ और कश्मीर पर फंस गया। दोनों को साथ समझना जरूरी इसलिए है क्योंकि जूनागढ़ की प्रजा हिंदू और नवाब मुस्लिम था, जबकि कश्मीर की प्रजा मुस्लिम और राजा हिंदू थे। जूनागढ़ के नवाब का नाम मोहब्बत खान था। उसमें कट्टरता कूट-कूट के भरी थी...

82 प्रतिशत हिंदू जनता की भावनाओं को ताक पर रखकर जूनागढ़ के नवाब ने 13 सिंतबर 1947 को पाकिस्तान में विलय स्वीकार कर लिया। पटेल और नेहरू को ये बात नागवार गुजरी, हिंदू बाहुल्य इलाकों में सेना भेज दी गई। आंदोलन शुरू हुआ और डरकर नवाब अपने पालतू कुत्तों के साथ पाकिस्तान भाग गया...

9 नवंबर 1947 को जूनागढ़ भारत का हिस्सा बन गया, मगर माउंटबेटन को संतुष्ट करने के लिए भारत ने जूनागढ़ में जनमत संग्रह कराया और 82 प्रतिशत हिंदू आबादी वाले जूनागढ़ में 91 प्रतिशत वोट भारत के पक्ष में पड़े। ऐसे में साफ है कि मुस्लिमों ने भी भारत के पक्ष में ही वोट किया, अब आते हैं कश्मीर पर...

हिंदू-मुस्लिम वाले नियम के तहत मुस्लिम बाहुल्य कश्मीर पर पाकिस्तान अपना अधिकार चाहता था। मगर कश्मीर पर वो नियम क्यों नहीं लगा, क्यों कश्मीर पाकिस्तान में नहीं जा पाया? जबकि कोल्ड वॉर के दौर में ब्रिटेन और अमेरिका ने पूरी ताकत लगा दी थी कि कश्मीर पाकिस्तान के हिस्से जाए।

मगर दुनिया की तमाम ताकतों के सामने पं. नेहरू जैसा कूटनीतिज्ञ चट्टान की तरह खड़े थे, वो हर कीमत पर कश्मीर हिंदुस्तान में चाहते थे मगर नैतिकता के मूल्यों पर। पाक, चीन, अफगानिस्तान से सटे और सोवियत संघ के नजदीक बसे कश्मीर की भौगोलिक स्थिति नेहरू को

अच्छे से पता थी। उन्हें पता था अगर कश्मीर हाथ से गया तो पाकिस्तान को पिट्ठू बना अमेरिका सोवियत संघ को मात देने के लिए कश्मीरी जमीन पर सैनिक तांडव करेगा। कश्मीर पर नेहरू अडिग थे, जबकि एक वक्त ऐसा भी आया जब पटेल कश्मीर पाक को देने को तैयार हो गए थे। पटेल के निजी सचिव रहे पी. शंकर ने ये बात अपनी किताब में लिखी है..

लेकिन जब जूनागढ़ पाकिस्तान में शामिल हुआ तो भी सरदार साहब ने भी मन बदल लिया। अब नेहरू-पटेल दोनों कश्मीर को भारत में मिलाने में लग गए। शेख अब्दुल्ला की दोस्ती के दम पर कश्मीरी दिलों को जीतना नेहरू के जिम्मे और राजा हरिसिंह को साधने का काम पटेल के जिम्मे था।

झेलम की बिसात पर गहरी शतरंज चल ही रही थी कि इतने में पं. नेहरू के अधीन काम कर रही इंटेलिजेंस यूनिट ने उन्हें खबर दी कि पाकिस्तान कबालियों के जरिए हमला करने की फिराक में है। इस पर 27 सिंतबर 1947 को पटेल को नेहरू चिट्ठी लिखते हैं "कश्मीर की परिस्थिति तेजी से बिगड़ रही हैं...

शीतकाल में कश्मीर का संबंध बाकी भारत से कट जाएगा, हवाई मार्ग भी बंद हो जाता है, पाकिस्तान कश्मीर में घुसपैठियों को भेजना चाहता है, महाराजा का प्रशासन इस खतरे को झेल नहीं पाएगा। वक्त की जरूरत है कि महाराजा, शेख अब्दुल्ला को रिहा कर नेशनल कॉन्फ्रेंस से दोस्ती करें। "नेहरू आगे लिखते हैं "शेख अब्दुल्ला की मदद से महाराजा पाकिस्तान के खिलाफ जनसमर्थन हासिल करें, शेख अब्दुल्ला ने कहा है कि वो मेरी सलाह पर काम करेंगे" यहां से ये साफ है कि शेख अब्दुल्ला को नेहरू साध चुके थे और राजा हरिसिंह से संपर्क के लिए पटेल पर निर्भर थे। यानि सबकुछ अकेले नहीं कर रहे थे...

सरदार साहब ने महाराजा से संपर्क साधा, 29 सिंतबर 1947 को अब्दुल्ला रिहा हो गए। और ऐतिहासिक भाषण दिया "पाकिस्तान के नारे में मेरा कभी विश्वास नहीं रहा, फिर भी पाकिस्तान आज वास्तविकता है, पंडित नेहरू मेरे दोस्त हैं और गांधी जी के प्रति मेरा पूज्य भाव है। मगर कश्मीर कहां रहेगा इसका फैसला यहां की 40 लाख जनता करेगी" यहां अब्दुल्ला का भाषण कूटनीति से भरा था, वो जनता को अपना चुनाव करने के लिए कह रहे थे, तो पाकिस्तान को नकार कर नेहरू को अपना दोस्त बता रहे थे। महाराजा अब भी आजादी के पशोपेश में थे। इतने में 22 अक्टूबर 1947 को कबाइली हमला हो गया..

कबाइलियों ने कश्मीर में तांडव करना शुरू कर दिया, मुजफ्फराबाद के आगे बढ़ वो श्रीनगर के करीब पहुंच गए। बिजली घर पर कब्जा कर श्रीनगर की बिजली गुल कर दी। उधर जिन्ना को श्रीनगर में ईद मनाने के सपने आने लगे। मगर मजबूर महाराजा ने आग्रह किया तो भारत ने अपनी सेना उतार दी।

27 अक्टूबर 1947 को सैनिकों से भरे 28 डकोटा विमान गोलियों की गूंज के बीच श्रीनगर हवाई अड्डे पर उतर चुके थे। बड़ी ही वीरता से जवानों ने कबाइलियों को खदेड़ना शुरू किया और कश्मीरी आवाम ने भी सेना का साथ दिया। कबाइलियों को खदेड़ने का काम लंबा चलने वाला था...क्योंकि अब बर्फ गिरने लगी थी

शांति चाहिए थी और जनमत संग्रह शांति का एक विकल्प था। इस पर बात करने के लिए माउंटबेटन नवंबर 1947 को कराची गए। और जिन्ना से पूछा आप कश्मीर में जनमत संग्रह का विरोध क्यों कर रहे हैं? इस पर जिन्ना ने जो जवाब दिया वो पं. नेहरू और अब्दुल्ला की ताकत और लोकप्रियता बताने के लिए काफी था...

जिन्ना ने कहा- "कश्मीर भारत के अधिकार में होते हुए और शेख अब्दुल्ला की सरकार होते हुए मुसलमानों पर दबाव डाला जाएगा, औसत मुसलमान पाकिस्तान के लिए वोट देने की हिम्मत नहीं करेगा"

कल्पना कीजिए कश्मीर में जनमत संग्रह की बात के लिए पं. नेहरू को ना जाने क्या-क्या कहा जाता है, मगर यहां तो उल्टा था। कश्मीरी दिलों को इस कदर जीता गया था कि मुस्लिम बाहुल्य होने के बावजूद पं. नेहरू नहीं जिन्ना जनमत संग्रह से डर रहे थे। और यही बापू के देश में सेक्युलिरिज्म के ताने-बाने की बड़ी जीत थी। क्योंकि जिन्ना को पता था कि जनमत संग्रह हुआ तो भारत जीतेगा। और फिर माउंटबेटन ने सबसे पहले जिन्ना को संयुक्त राष्ट्र संघ की निगरानी में जनमत संग्रह कराने की पेशकश की। अब दिसंबर आ चुका था, पहाड़ बर्फ से लद चुके थे, श्रीनगर तो खाली हो चुका था, मगर गुलाम कश्मीर अब भी कबाइलियों के कब्जे में था। पं. नेहरू ने फिर महाराजा हरिसिंह को 1 दिसंबर को चिट्ठी लिखी

नेहरू लिखते हैं- "हम युद्ध से नहीं डरते, मगर हमें चिंता यह है कि कश्मीरी जनता को कम से कम नुकसान हो।मुझे लगता है कि समझौते के लिए यह उचित समय है, शीत ऋतु में हमारी कठिनाइयां बढ़ रही है, संपूर्ण क्षेत्र से आक्रमणकारियों को भगा पाना हमारी सेनाओं के लिए मुश्किल है" आगे लिखते हैं "गर्मियां होती तो उन्हें भगाना आसान नहीं होता, मगर इतना इंतजार करने का मतलब है कि और 4 महीने। तब तक वो कश्मीरी जनता को सताते रहेंगे, ऐसे में समझौते की कोशिश करते हुए छोटी लड़ाई जारी रखनी चाहिए" यहां से ये साफ हो गया कि नेहरू कश्मीर के लिए संयुक्त राष्ट्र जाने को भी तैयार हैं..

UN की निगरानी में जनमत संग्रह कराने को भी तैयार थे। एक वजह यह भी थी कि इससे पहले जूनागढ़ में जनमत संग्रह हो चुका था। वहां संयुक्त राष्ट्र को बीच में लाने की जरूरत नहीं पड़ी क्योंकि जूनागढ़ की सीमाएं पाकिस्तान से नहीं सटती थीं। इसके बाद आती है 1 जनवरी 1948 की तारीख भारत मामले को UN ले गया। मगर जिस तरह की उम्मीद थी, UN ने वैसी नहीं सुनी। मगर ह ने युद्ध रोकने का काम जरूर किया। कई लोग इसे नेहरू की गलती बताते हैं, कई सही फैसला। मगर 96 साल के वयोवृद्ध डिप्लोमेट अधिकारी एमके रसगोत्रा जो नेहरू कार्यकाल में भी काम कर चुके हैं और 1982-85 में भारत के विदेश सचिव रहे एमके रसगोत्रा बड़ी बात कहते हैं- "यूनाइटेड नेशन्स जाना उन परिस्थितियों में बिलकुल सही फैसला था, जिसने आगे देश की मदद की। क्योंकि ह में पहली शर्त यही रखी गई कि जनमत संग्रह तभी होगा, जब पाकिस्तान गुलाम कश्मीर से अपनी फौज पीछे हटाए और दूसरा आजादी का कोई विकल्प नहीं दिया गया।" उनके इंटरव्यू का लिंक नीचे दे दूंगा।

और ज्ञात इतिहास में संयुक्त राष्ट्र जाने से भारत का कोई नुकसान अब तक तो नहीं हुआ, चाहे आगे चलकर शेख अब्दुल्ला आजादी के ख्वाब देखने लगे हों या फिर 1989 के चुनाव के बाद पनपा आतंकी विद्रोह हो पाकिस्तान लोगों को भड़काने के अलावा कुछ कर नहीं पाया। क्योंकि जनमत संग्रह कराने के लिए सबसे पहले उसे गुलाम कश्मीर खाली करना होगा।

तो सार यही है कि नेहरू ना होते तो समस्या छोड़िए, कश्मीर ही भारत में ना होता। फिर कहूंगा व्हाट्सएप यूनिवर्सिटी बर्बाद कर देगी, किताब पढ़िए, बच्चों को भी पढ़ाइए।

(सोर्स- ''इंडिया आफ्टर गांधी'' के 40 पन्ने और ''नेहरू मिथक और सत्य'' के 43 पन्नों को बड़ी मुश्किल से समेटने की कोशिश की है।)

मत्त उन्मत्त भक्त तीनों ही....

डा. रामवीर

मत्त उन्मत्त भक्त तीनों ही नहीं समझते बात,
इन को समझा सके भला यह किस की है औकात।

ओब्सेशन और भक्ति दोनों एक ही चीज का नाम,
भक्त सुने जाते हैं कहते 'ले रक्खा है नाम' ।

राम रहीम हो रामपाल हो या हो आशाराम,
इसी तरह के अन्य बहुत से देते देखे नाम ।

अब तो राजनीति तक में भी देने लगे हैं नाम,
भक्तों को दे रही भाजपा बस मोदी का नाम ।

मोदी नाम ले कर के भक्त हो जाते हैं मत्त,
'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या' वत् केवल मोदी सत्य।

अब भक्तों की भीड़ के आगे ज्ञानी हुए बेमाने,
भक्त उसे ही ज्ञानी मानें जो मोदी को माने।

अन्धभक्ति और अन्धविश्वास यह कैसा है विकास,
देश बाट तक रहा न जाने कब फैलेगा प्रकाश।